समयसार, गाथा १७७-१७८ (गाथा के) भावार्थ का दूसरा पैराग्राफ। यहाँ सम्यग्दृष्टि का माहात्म्य कहा है। ऐसा कहा न (कि) सम्यग्दृष्टि को आस्रव और बन्ध नहीं है। यह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है। पूर्ण स्वरूप शुद्धचैतन्य... आहाहा! अखण्ड स्वरूप अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. शक्ति का संग्रहालय। अनन्त की दृष्टि हुई, वह अलौकिक बात है। इस दृष्टि से संसार का वहाँ अन्त है। दया, दान, व्रत, भक्ति (आदि की) चाहे जो क्रिया करे, उसकी कुछ महिमा नहीं है। शुभभाव अनन्तबार किया और करे, उसकी कोई महिमा नहीं है। महिमा और माहात्म्य, चमत्कार को प्रभु चैतन्य चमत्कारी वस्तु है, उसे जिसने स्पर्श किया, उसका जिसे अनुभव हुआ, उसका जिसे ज्ञान होकर प्रतीति हुई है, उसके माहात्म्य

का वर्णन है। उसे आस्रव और बन्ध नहीं है। अनन्त संसार का कारण, ऐसा आस्रव और बन्ध उसे नहीं है। अल्प है, उसकी गिनती (नहीं है)। (सम्यग्दर्शन के) माहात्म्य के समक्ष (उसकी) गिनती गिनी नहीं है।

सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी कहा जाता है.. है? भावार्थ का दूसरा भाग, दूसरा पैराग्राफ। **सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी कहा जाता है..** कितने ही ऐसा कहते हैं कि ज्ञानी तो सातवें (गुणस्थान से) होता है। वीतरागरूप हो तब (होता है)। तब वीतरागदृष्टि होती है, नीचे सम्यग्दृष्टि को सरागदृष्टि है, ऐसा नहीं है। पहली भूमिका में भगवान पूर्ण स्वरूप प्रभु बाहर से सर्वथा प्रकार से उपयोग समेट डाला न! अन्तर्मुख दृष्टि में पलटा किया, वह कोई कम बात नहीं है। बाहर के लक्ष्य से तो व्रत, तप, भक्ति और पूजा (अनन्त बार की है), मन्दिर बनाये, गजरथ (निकाले), सब अनन्त बार किया। उसमें कहीं कोई भव का अन्त नहीं है। आहाहा!

यह तो भव के अन्त के करनेवाले को ज्ञानी कहा जाता है, **वह योग्य ही है।** वह उचित है। शास्त्र का इतना पढ़ा, इसलिए ज्ञानी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी प्रभु, जाननस्वभाव का पिण्ड ज्ञायक, उसका ज्ञान (होवे), उसे ज्ञानी कहते हैं। दूसरा क्षयोपशम कम हो या समझाना न भी आवे, इससे कहीं ज्ञान, अज्ञान नहीं होता और ग्यारह अंग का ज्ञान होने पर वह अज्ञान है, वह कहीं ज्ञान नहीं होता। आहाहा!

जिसे चैतन्य महाप्रभु का ज्ञान हुआ, उसे जिसने ज्ञान में ज्ञेय बनाकर, अनादि काल से पर को ज्ञेय बनाकर पर्याय को वहाँ रोका है... आहाहा! उस पर्याय को पर्याय में स्व-स्वरूप को ज्ञेय बनाकर। आहाहा! जहाँ सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञान हुआ है, इसलिए उसे ज्ञानी कहना योग्य ही है। भले तिर्यंच सूकर हो.. आहाहा! चूहा हो, गिलहरी हो परन्तु भगवान आत्मा पूर्ण प्रभु वहाँ तो उसे पड़ा है। उसका जिसने अन्तर में सन्मुख होकर, संयोग का लक्ष्य छोड़कर, निमित्त का छोड़कर, राग का छोड़कर और पर्याय का (लक्ष्य भी) छोड़कर, पर्याय ने पर्याय का लक्ष्य छोड़कर पर्याय, द्रव्य के अवलम्बन करती है (तो) कहते हैं कि उसे ज्ञानी कहना, वह उचित है। आहाहा!

'ज्ञानी' शब्द मुख्यतया तीन अपेक्षाओं को लेकर प्रयुक्त होता है:- (१) प्रथम

तो, जिसे ज्ञान हो, वह ज्ञानी कहलाता है; इस प्रकार सामान्य ज्ञान की अपेक्षा से सभी जीव ज्ञानी हैं। क्या कहते हैं? सब जीव ज्ञानस्वरूप से है, इस अपेक्षा से ज्ञानी कहलाते हैं परन्तु वह कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं है। मिथ्याज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान नहीं है। ज्ञानी (अर्थात्) जो आत्मा ज्ञान का धारक, पूर्ण ज्ञान का धारक, अकेला ज्ञायकभाव है। इससे सबको ज्ञानी कहा जाता है। सम्यक्-मिथ्याज्ञानी यहाँ नहीं है। पहले सामान्य की (बात है)। **इस प्रकार सामान्य ज्ञान की अपेक्षा से सभी जीव ज्ञानी हैं।** आहाहा! अभव्य भी ज्ञानी है क्योंकि उसका स्वभाव ही ज्ञानस्वरूप है न! जाननस्वभावभाव से भरपूर भगवान, उसके कारण सबको ज्ञानी कहा जाता है, परन्तु इससे वह भव के अन्त का कारण है, यह नहीं। आहाहा!

(२) यदि सम्यक् ज्ञान और मिथ्या ज्ञान की अपेक्षा से विचार किया जाये तो.. यहाँ जो कहा है वह। यहाँ तो सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान, इसकी अपेक्षा से ज्ञान लिया जाए तो **सम्यग्दृष्टि को सम्यग्ज्ञान होता है..** राग से भिन्न पड़कर स्वरूप का ज्ञान (हुआ ऐसा) सम्यग्दृष्टि भेदज्ञानी को होने से **सम्यग्दृष्टि को सम्यग्ज्ञान होता है, इसलिए उस अपेक्षा से वह ज्ञानी है,..** इस अपेक्षा से उसे यहाँ ज्ञानी कहा है। यह कितने ही बड़ा विवाद उठाते हैं। वास्तव में ज्ञानी (अर्थात् ऐसा कि) निर्विकल्प दृष्टि सातवें (गुणस्थान में) होवे, तब सम्यग्दर्शन निर्विकल्प होता है। आहाहा! ज्ञानसागर ने ऐसा लिया है। जब तक पूर्ण निर्विकल्प समाधि न हो, वहाँ तक उसे ज्ञान नहीं है, ऐसा कहा। आहाहा! इस बात को मानते नहीं। ऐसा कि यह तो पण्डित का कथन है न! पण्डित का कथन पाठ में बोलता है। १४४ गाथा। स्वरूप की प्राप्ति करे, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान (नाम) प्राप्त होता है। वहाँ ऐसा कहा, वहाँ चारित्र तो लिया नहीं। पाठ है, ऐसे तो बहुत पाठ हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्यदेव स्वयं का आशय देंगे। **सम्यग्दृष्टि को सम्यग्ज्ञान होता है, इसलिए उस अपेक्षा से वह ज्ञानी है, और मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है।** आहाहा!

(३) सम्पूर्ण ज्ञान और अपूर्ण ज्ञान की अपेक्षा से विचार किया जाये.. आहाहा! सम्पूर्ण ज्ञान और अपूर्ण ज्ञान की अपेक्षा लें **तो केवली भगवान ज्ञानी हैं..** आहाहा! बारहवें गुणस्थान तक अभी पूर्ण ज्ञान नहीं है और छद्मस्थ अज्ञानी है। अज्ञानी है अर्थात् पूर्ण ज्ञान नहीं है, ऐसा। छद्मस्थ है, छद्मस्थ (को) आवरण है, भाव आवरण में जो

रहा है, इसलिए उसे अज्ञानी कहने में आता है। बारहवें गुणस्थान तक। यह ज्ञान की पूर्णता की अपेक्षा से; और पूर्ण के अभाव की अपेक्षा से अज्ञानी कहा परन्तु सम्यग्ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं है। पूर्ण ज्ञान के अभाव में उसे अज्ञानी (कहा), पूर्ण ज्ञान का अभाव है, इसलिए अज्ञानी है, इतना कहा। मिथ्याज्ञान और मिथ्यादर्शन यह नहीं। आहाहा!

क्योंकि सिद्धान्त में पाँच भावों का कथन करने पर.. शास्त्र में जहाँ पाँच भावों का कथन है, पंचमभावपूर्वक चार भाव, पर्याय के (लिए हैं)। आहाहा! त्रिकाली पंचम भाव भगवान का भाव और चार पर्याय में भाव, इन पाँच भाव का जहाँ कथन है, वहाँ **बारहवें गुणस्थान तक अज्ञानभाव कहा है।** वीतराग हुआ है, अन्तर्मुहूर्त पश्चात् केवलज्ञान होना है, परन्तु उस पूर्णज्ञान के अभाव की अपेक्षा से बारहवाँ गुणस्थान वीतरागी है, उसे भी अज्ञानी कहा है। आहाहा! अज्ञानी अर्थात् मिथ्याज्ञानी, ऐसा नहीं है। पूर्ण ज्ञान का अभाव, इतनी अपेक्षा से अज्ञानी, ऐसा।

इस प्रकार अनेकान्त से अपेक्षा के द्वारा.. देखो! यह अनेकान्त! सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी कहा, वह वस्तु के स्वरूप के भान की अपेक्षा से। मिथ्यादृष्टि को अज्ञानी कहा, वह स्वरूप के अज्ञान की (अपेक्षा से)। बारहवें गुणस्थान में अज्ञानी कहा, वह पूर्ण ज्ञान के अभाव की (अपेक्षा से)। एक ही अपेक्षा ले, कि देखो! मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, वैसा ही बारहवें गुणस्थानवाला अज्ञानी है (तो) ऐसा नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार अनेकान्त से अपेक्षा के द्वारा विधिनिषेध निर्बाधरूप से सिद्ध होता है;.. विधिनिषेध (अर्थात्) सम्यग्दृष्टि में ज्ञान है, बारहवें गुणस्थान में अज्ञान है, सम्पूर्ण (ज्ञान) नहीं है इसलिए; इस प्रकार विधिनिषेध से, अनेकान्त से बात सिद्ध होती है। आहाहा! सर्वथा एकान्त से कुछ भी सिद्ध नहीं होता। सर्वथा एकान्त करने जाए तो कोई बात सिद्ध नहीं होती, उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि अनेकान्त अर्थात् निमित्त से भी होता है और उपादान से भी होता है। व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है, यह अनेकान्त नहीं है। अनेकान्त यह है कि निश्चय से होता है और व्यवहार से नहीं होता। उपादान से होता है और निमित्त से नहीं होता—यह वहाँ अनेकान्त है। यहाँ अनेकान्त तो अपेक्षित सम्यग्ज्ञान और पूर्ण के अभाव की अपेक्षा से अज्ञान (कहा) और नीचे मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से अज्ञान (कहा), इस अपेक्षा से यह बात कही है। आहाहा!

कलश–१२०

अब, ज्ञानी को बन्ध नहीं होता, यह शुद्धनय का माहात्म्य है; इसलिए शुद्धनय की महिमा दर्शक काव्य कहते हैं:–

(वसन्ततिलका)

अध्यास्य शुद्धनय–मुद्धत–बोधचिह्न–
मैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते।
रागादि–मुक्त–मनसः सततं भवन्तः
पश्यन्ति बन्ध–विधुरं समयस्य सारम्।।१२०।।

श्लोकार्थ : [उद्धतबोधचिह्नम् शुद्धनयम् अध्यास्य] उद्धत ज्ञान (–जो कि किसी के दबाये नहीं दब सकता, ऐसा उन्नत ज्ञान) जिसका लक्षण है, ऐसे शुद्धनय में रहकर अर्थात् शुद्धनय का आश्रय लेकर [ये] जो [सदा एव] सदा ही [एकाग्र्यम् एव] एकाग्रता का [कलयन्ति] अभ्यास करते हैं [ते] वे, [सततं] निरन्तर [रागादिमुक्तमनसः भवन्तः] रागादि से रहित चित्तवाले वर्तते हुए, [बन्धविधुरं समयस्य सारम्] बन्धरहित समय के सार को (अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को) [पश्यन्ति] देखते हैं–अनुभव करते हैं।

भावार्थ : यहाँ शुद्धनय के द्वारा एकाग्रता का अभ्यास करने को कहा है। 'मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ' – ऐसा जो आत्मद्रव्य का परिणमन, वह शुद्धनय। ऐसे परिणमन के कारण वृत्ति ज्ञान की ओर उन्मुख होती रहे और स्थिरता बढ़ती जाये, सो एकाग्रता का अभ्यास।

शुद्धनय श्रुतज्ञान का अंश है और श्रुतज्ञान तो परोक्ष है, इसलिए इस अपेक्षा से शुद्धनय के द्वारा होनेवाला शुद्धस्वरूप का अनुभव भी परोक्ष है। और वह अनुभव एकदेश शुद्ध है, इस अपेक्षा से उसे व्यवहार से प्रत्यक्ष भी कहा जाता है। साक्षात् शुद्धनय तो केवलज्ञान होने पर होता है।।१२०।।

श्लोक - १२० पर प्रवचन

अब, ज्ञानी को बन्ध नहीं होता, यह शुद्धनय का माहात्म्य है.. देखा! आहाहा! शुद्ध भगवान पूर्ण शुद्धस्वरूप, पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण का सागर समुद्र पवित्र प्रभु, अकेली पवित्रता का पिण्ड प्रभु! आहाहा! चैतन्य प्रतिमा! अकेली पवित्रता के गुण की प्रतिमा प्रभु! आहाहा! उसे यदि लें तो उसका माहात्म्य है। (इसलिए) **शुद्धनय की महिमा दर्शक काव्य कहते हैं:-** इस शुद्धनय के (कारण) ज्ञानी को बन्ध नहीं होता, यह शुद्धनय का माहात्म्य है। शुद्धनय अर्थात् निर्विकल्प आनन्द के अनुभव का यह माहात्म्य है। पूर्ण स्वरूप का अनुभव और प्रतीति (हुई), उसका यह माहात्म्य है। ज्ञानी को बन्ध नहीं होता, उसमें शुद्धनय का माहात्म्य है। आहाहा!

निर्विकल्प शुद्धचैतन्य भगवान जहाँ समाधि में अन्दर शान्ति में पड़ा है... आहाहा! वह शुद्धनय का माहात्म्य है। **इसलिए शुद्धनय की महिमा दर्शक काव्य कहते हैं:-**

अध्यास्य शुद्धनय-मुद्धत-बोधचिह्न-
मैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते।
रागादि-मुक्त-मनसः सततं भवन्तः
पश्यन्ति बन्ध-विधुरं समयस्य सारम् ।।१२०।।

आहाहा! **'उद्धतबोधचिह्नम् शुद्धनयम् अध्यास्य' उद्धत ज्ञान..** आहाहा! ज्ञान जो आत्मा का हुआ, वह ज्ञान उद्धत हो गया। वह किसी को गिनता नहीं। आहाहा! कर्म के उदय को गिनता नहीं, शास्त्र के पन्ने पढ़ूँ तो ज्ञान होगा, ऐसा भी गिनता नहीं, ऐसा उद्धत ज्ञान है। आहाहा! **उद्धत ज्ञान (-किसी के दबाये नहीं दब सकता, ऐसा उन्नत ज्ञान)..** आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु, चैतन्य चन्द्र, चैतन्य चन्द्र अन्दर विराजता है। शान्ति का सागर! आहा! ज्ञान और उसके साथ शान्ति और उसके साथ आनन्द, ऐसा जो भगवान निर्विकल्प वस्तु, उसे यहाँ शुद्धनय कहा है। उस शुद्धनय का-आत्मा का ज्ञान हुआ, (वह) उद्धत ज्ञान है। आहाहा! **(-किसी के दबाये नहीं दब सकता..)** वह कर्म के उदय के जोर में दबता नहीं। आहाहा! अथवा विशेष विद्वतता और पण्डिताई न हो, इसलिए ज्ञान ऐसा माने कि अरे... मुझे ज्ञान नहीं, ऐसा वह नहीं है। वह उद्धत ज्ञान है। आहाहा!

बहुत (लोग) बाहर में ज्ञान में निपुण दिखाई दे, इससे अपने को ऐसा न हो जाए कि अरे रे! यह मुझे ज्ञान बहुत कम है। वह उद्धत ज्ञान किसी को गिनता नहीं। विशेष जाननेवालों को भी (वे) ज्ञानी हैं, ऐसा वह गिनता नहीं। आहाहा! और मैं कम जानता हूँ, इसलिए मैं ज्ञानी नहीं, (ऐसा नहीं) ऐसा वह ज्ञान उद्धत हो गया है। आहाहा! देखो! सम्यग्दर्शन का माहात्म्य और सम्यग्ज्ञान का माहात्म्य! भगवान आत्मा का दर्शन और आत्मा का ज्ञान अर्थात् क्या!! आहाहा! जिसे भगवान की भेंट हुई। यह भगवान स्वयं, हों! आहाहा! उसका जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञानी है और वह ज्ञान उद्धत हो गया है। आहाहा! मैं शास्त्र पढ़ूँ तो मुझे ज्ञान होगा, ऐसा भी उसे ज्ञान में नहीं है। इतना ज्ञान उद्धत हो गया है। आहाहा!

निज खान में से ज्ञान आया। आहाहा! जिसमें अनन्त-अनन्त ज्ञान भरा है, जिसका पार नहीं, ऐसा भगवान स्वभाव में से ज्ञान आया, वह ज्ञान दूसरे के विशेष ज्ञान देखकर मैं हीन हूँ, ऐसा नहीं कहता, ऐसे दब नहीं जाता। आहाहा! और केवलज्ञानी को देखकर उसे ऐसा नहीं होता कि ये तो केवलज्ञानी हैं, पूर्ण ज्ञानी हैं, इस अपेक्षा से तो मैं अज्ञानी हूँ। नहीं; मैं तो ज्ञानी हूँ। समझ में आया? आहाहा!

स्वद्रव्य के आश्रय से भगवान जागकर उठा, वह ज्ञान जगत की किसी चीज़ से दबता नहीं है अर्थात् किसी को गिनता नहीं है। आहाहा! वह ज्ञान, भगवान से भी मुझे ज्ञान होगा, ऐसा वह ज्ञान गिनता नहीं है। आहाहा! **उद्धत ज्ञान (-किसी के दबाये नहीं दब सकता ऐसा उन्नत ज्ञान)..** ऐसा उन्नत ज्ञान है। आहाहा! जिसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द का नमूना स्वाद में आया। आहाहा! वह ज्ञान किसी से दब नहीं जाता। आहाहा! जैसा स्वभाव, वैसा श्रुतज्ञान।

जिसका लक्षण है, ऐसे शुद्धनय में रहकर अर्थात् शुद्धनय का आश्रय लेकर.. अर्थात् कि पूर्ण निर्विकल्प वस्तु हूँ, उसका आश्रय करके जो दशा हुई। आहाहा! **जो सदा ही एकाग्रता का अभ्यास करते हैं..** अर्थात् आनन्द और ज्ञानस्वरूप ऐसा जो स्वभाव, उसमें एकाग्रता का अभ्यास करते हैं। आहाहा! यह शास्त्र का अभ्यास करते हैं, कि (ऐसा नहीं)। आहाहा! यह तो आया नहीं? कलश-टीका में आया नहीं? अनुभूति होने पर शास्त्र पढ़ने की अटक नहीं है। कलश-टीका में (आता है)। आहाहा! पढ़े, आवे परन्तु वहाँ

आगे ऐसा नहीं कि मैं यह पढ़ता हूँ तो ही मेरा यह ज्ञान रह जाएगा, नहीं तो ज्ञान नहीं रहेगा। आहाहा!

भगवान चैतन्यस्वभाव पूर्ण प्रभु! अरे! जो अनन्त काल में हाथ नहीं आया था (वह हाथ) आया, वह ज्ञान अपूर्ण भले हो और दूसरे को विशेष ज्ञान हो। विशेष के दो प्रकार —जानपने का विशेष और एक प्रगट हुआ विशेष केवलज्ञान। परन्तु इसे ऐसा नहीं होता कि मैं अज्ञानी हूँ और ये केवलज्ञानी हैं। ऐसी बात है। अरे! यह तो मुद्दे की रकम की बात है।

सदा ही एकाग्रता का अभ्यास करते हैं.. किसकी एकाग्रता? प्रभु! चैतन्य वीतरागमूर्ति प्रभु निर्विकल्प समाधि और एकाग्रता का अभ्यास (करते हैं)। यह अभ्यास! प्रवचनसार में कहा कि भावज्ञान के लक्ष्य से आगम का अभ्यास करना। कहा है, अपेक्षा से जहाँ व्यवहार से कहा है। आहाहा! यह तो प्रभु जहाँ एकाग्र होना है, वहाँ होता है। आहाहा! महासमुद्र भरा है, भगवान! आहाहा! जिसकी पूर्णता की अन्दर में कोई अनन्त गुणों में अन्तिम यह गुण है, इतने गुण भरे हैं कि जिनका अन्तिम गुण है, इतना नहीं। ऐसे अनन्त गुण भरे हैं। आहाहा! यह क्या कहा?

आत्मा में इतने अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण हैं कि यह गुण अन्तिम है और यह अनन्त में से अनन्तवाँ (अन्तिम है, ऐसा जिसमें नहीं)... आहाहा! ऐसे द्रव्य का ज्ञान हुआ - ऐसे प्रभु का ज्ञान हुआ, ऐसे भगवान का ज्ञान हुआ... आहाहा! वह ज्ञान अपने में ही अभ्यास करता है, एकाग्र होता है। मुझे ज्ञान बढ़ेगा कि आगे कैसे होगा? वह तो उसमें एकाग्र (होता है) ऐसे बहुत पढ़ूँगा और शास्त्रज्ञान करूँगा तो मुझे केवलज्ञान होगा, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! जिसमें पूरा ज्ञान भरा है। अकेली समझ.. समझ.. ज्ञान का पिण्ड है। अनन्त बेहद भरा हुआ ज्ञान और उस ज्ञान में अनन्त गुण का रूप है। आहाहा! पुरुषार्थ है, आनन्द है, उसमें शान्ति है। आहाहा! ऐसा जो ज्ञान, वह अपने में एकाग्रता का अभ्यास करता है। आहाहा! क्या शैली ली है, देखो न! आहाहा!

पूर्णानन्द... आहाहा! आठ वर्ष की बालिका को सम्यग्दर्शन हो, सम्यग्ज्ञानी है और वह अन्तर में एकाग्रता का अभ्यास करने लगे। आहाहा! जहाँ प्रभु की महत्ता-महिमा का भान पड़ा है। आहाहा! उसमें एकाग्रता का अभ्यास ज्ञानी करते हैं।

मुमुक्षु : इस शास्त्र का अभ्यास कब करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार से आवे तब हो। भाव के लक्ष्य से (स्वाध्याय का भाव) आवे, परन्तु जोर (वहाँ) है, ज्ञान बढ़ने में (जोर है), इस शास्त्र को भाव के लक्ष्य से भी बहुत-बहुत बढ़ जाए, (ऐसा नहीं है), अन्दर एकाग्र हो तो ज्ञान बढ़ेगा। आहाहा! अरे रे! ऐसा मार्ग, प्रभु! चैतन्य महाप्रभु विराजता है, उसकी लोगों को कीमत नहीं। कीमत यह दया, दान, व्रत, तप, भक्ति और पूजा... रंक है, भिखारी है। जहर का प्याला है। आहाहा! उसे माहात्म्य देते हैं। अमृत का सागर नाथ... आहाहा! उसे माहात्म्य नहीं देते, इसलिए इसके भवभ्रमण नहीं मिटते। आहाहा!

मुमुक्षु : आगम के अभ्यास करने की वृत्ति फिर रहती ही नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि हो तो ही इसका अभ्यास करना है, इसमें एकाग्र होना है। जिसे देखा है कि यह तो आत्मा भगवान परिपूर्ण आनन्द से भरपूर शुद्ध है, इसलिए उसमें ही एकाग्र होने पर मेरा ज्ञान और शान्ति बढ़ेगी। आहाहा! यह तो अगम्यगम्य की बातें हैं। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने जगत को प्रसिद्ध की है। दुनिया माने, न माने, सुगठित रहे, न रहे, (उसकी दरकार नहीं है)। आहाहा!

एक जगह ऐसा कहा कि भावलक्ष्य से द्रव्यश्रुत का अभ्यास करना। एक जगह ऐसा कहा कि शास्त्र में बुद्धि जाती है, वह व्यभिचारिणी है। किस अपेक्षा से कहा ? बापू! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि मुझे तो स्वभाव भगवान परिपूर्ण है, उसे मैंने जाना है। अब मुझे तो उसमें ही एकाग्रता करनी है। आहाहा! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही'। आहाहा!

अनन्त-अनन्त चैतन्य के चमत्कार, बापू! उसके एक-एक गुण का चमत्कार! आहाहा! पूर्ण गुण, पूर्ण स्वभाव, पूर्ण शक्ति, पूर्ण एक-एक सत् का सत्व... आहाहा! उसके चमत्कार की क्या बातें करनी!! ऐसे-ऐसे अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणों का चमत्कार, चैतन्य चमत्कारी पदार्थ है! आहाहा! आहाहा! जगत के चमत्कार, वे सब तुच्छ हैं। आहाहा! यह प्रभु का चमत्कार! आहाहा! एक-एक गुण चमत्कार से भरपूर, ऐसे अनन्त गुण का चैतन्य चमत्कारी तत्त्व प्रभु का ज्ञान हो, वह उसमें एकाग्र होने के लिये है। आहाहा! क्या शैली!

एक ओर ऐसा कहा कि भाव श्रुतज्ञान द्वारा—लक्ष्य से द्रव्यश्रुत का अभ्यास करना, आगम अभ्यास करना। आहाहा! परन्तु सब बात स्वद्रव्य के अवलम्बन में एकाग्रता बढ़ने की है। उसमें एकाग्रता बढ़े, वही ज्ञानी का परिणमन और हेतु है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। अभ्यास '**कलयन्ति**' है न? '**कलयन्ति**' अर्थात् अनुभव करते हैं। **अभ्यास करते हैं..** आहाहा! **एकाग्रता का ही..** ऐसा है, देखा? '**एकाग्र्यम् एव**' शब्द है न? है? संस्कृत देखो। श्लोकार्थ '**एकाग्र्यम् एव**' ऐसा है। एक यह निश्चय कर डाला। आहाहा!

ज्ञानी तो भगवान आत्मा... आहाहा! उसके पीछे चक्रवर्ती का राज भी छिलके जैसा लगता है। आहाहा! आहाहा! यहाँ महाकसदार पड़ा प्रभु! उसे यह (बाहर के) कस की क्या कीमत? आहाहा! इसलिए जिसे उसका ज्ञान हुआ, वह उसमें एकाग्र होना चाहता है। आहाहा! '**एकाग्र्यम् एव**' ऐसा शब्द है।

मुमुक्षु : ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, 'ही'। आहाहा! क्या शैली! अमृतचन्द्राचार्यदेव हजार वर्ष पहले जो हुए, परन्तु उनकी शैली तो देखो! आहाहा! उदय भाव से भर गये है। पारिणामिकभाव को जगाने के लिए जी रहे हैं। आहाहा! पारिणामिकभाव से परिपूर्ण परमभाव पड़ा है, उसका ज्ञान तो हुआ, परन्तु अब उसमें विशेष एकाग्रता का ही अभ्यास करते हैं। आहाहा! सब बात उड़ा दी! '**एकाग्र्यम् एव**' सन्त कहते हैं, प्रभु! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। भगवान के पथानुगामी हैं। एकाध भव में केवलज्ञान लेनेवाले हैं। आहाहा! केवलज्ञान जिनकी नजर में तैरता है। जिनकी श्रुतज्ञान, केवलज्ञान को बुला रहा है। आहाहा! जिनका मति और श्रुतज्ञान पंचम काल में (केवलज्ञान को बुला रहा है)! मुनि को भी बापू! काल-फाल कहाँ वहाँ है? आहाहा! वह भी मुक्ति, मोक्ष को, केवल (ज्ञान) को बुला रहा है। आहाहा! वे बुलावे (न), भाई! आओ.. आओ। ऐसा नहीं कहते? इसी प्रकार यह बुलाते हैं, आओ... आओ... आओ। हम एकाग्रता का अभ्यास करते हैं, उसमें केवलज्ञान आओ। ऐसी बातें हैं, चिमनभाई! बनिये साधारण ऐसे वीर्यहीन का यहाँ काम नहीं है। सुरेन्द्रभाई! आहाहा! यह तो वीरों का मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वार्थसिद्धि के देव तो तैंतीस सागरोपम तक आगम की चर्चा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करे, करे, वह भाई ने लिखा नहीं ? सोगानी ने लिखा है कि चर्चा बहुत करे, उससे क्या हुआ ? (आता) है ? आहाहा ! तैंतीस सागर तक समकिती वहाँ चर्चा करे, तो भी वह आगे नहीं बढ़ता, चौथे से पाँचवें में नहीं जाता। आहाहा ! सर्वार्थसिद्धि के देव ! बापू ! यह तो अगम्यगम्य की बातें हैं, नाथ ! आहाहा ! यह तैंतीस सागर किसे कहें, भाई ! एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम (होते हैं), दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम ! एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष (होते हैं), ऐसे तैंतीस सागर चर्चा करे परन्तु चौथे से पाँचवें में नहीं जाते। आहाहा ! और भगवान जहाँ है, वहाँ एकाग्र होवे तो अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान ले लेवे। तैंतीस सागर की चर्चा से पाँचवाँ गुणस्थान नहीं आता। आहाहा !

(यहाँ) तीन लोक का नाथ पूर्ण स्वरूप में एकाग्र होने पर अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान लेता है। पाँच समिति और तीन गुप्ति का ज्ञान विशेष न भी हो। आहाहा ! परन्तु अन्तरंग एकाग्रता (करता है)। आहाहा ! यह सब महिमा प्रभु की है। स्वयं प्रभु है। वह प्रभुता, पामरता के कारण वह प्रभुता कैसे प्रगट हो ? उस प्रभुता की तो एकाग्रता हो, उसमें इसे महिमा दे और एकाग्र हो, तब प्रभुता प्रगट होती है। आहाहा ! आहाहा !

एक ओर शास्त्र में बुद्धि जाने पर व्यभिचारी कहे, एक ओर शास्त्र का अभ्यास कर तो कल्याण होगा, ऐसा कहे। एक ओर (कहे) स्व के लक्ष्य से शास्त्र का अभ्यास करना, (यह) कल्याण का हेतु है। अपेक्षा से बात है, बापू ! मूल तो यह है। आहाहा ! जिसमें-गुण में अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें ठसाठस पड़ी है, ऐसे अनन्त (गुणों के एक रूप में) एकाग्र होने पर तुझे केवलज्ञान हो जाएगा। शास्त्र का बहुत अभ्यास हो गया और बहुत ज्ञान हुआ, इसलिए तुझे केवलज्ञान हो जाएगा, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! मीठालालजी ! ऐसी बात है।

है दरकार अमृतचन्द्राचार्यदेव को दुनिया की ? तुम एकाग्रता की ही बात करते हो। आहाहा ! भगवान तुम्हारा परिचय करना, यह भी तुम नहीं कहते ? आहाहा ! सत् समागम करना, (ऐसा नहीं कहते)। भाई ! आहाहा ! तू सत् नहीं ? आहाहा ! सत् समागम, वह क्या सत् नहीं प्रभु ? महाप्रभु सत् है। महासत्ता चैतन्य सत् है। महा अस्तित्वरूप चैतन्य सत्ता है, सत् है। महा चमत्कारी का पिण्ड, महासत्ता की सत्ता का चमत्कारी भगवान है। उस सत् में एकाग्र हो ! आहाहा ! बाकी उसके पास दूसरी बातें हों व्यवहार से। आहाहा ! और

उसमें तो ऐसा भी कह न कि बारह अंग में अनुभूति का उद्देश्य है। बारह अंग हैं, वे भी विकल्प हैं। उनमें भी अनुभूति (अर्थात्) आत्मा को अनुसरण करना, (ऐसा कहा है)। आहाहा! बारह अंग में यह कथन है। आहाहा!

भगवान तीन लोक का नाथ प्रभु! आहाहा! जिसके समक्ष परमात्मा अरिहन्त की पर्याय भी अल्प कहलाती है। यह तो अनन्त-अनन्त गुण का (पिण्ड है)। आहाहा! ऐसे महाप्रभु में एकाग्रता का अभ्यास कर, प्रभु! आहाहा! यह बाहर की धमाल, गजरथ निकाले, लोग इकट्ठे हों, जन्म-महोत्सव और दीक्षा महोत्सव और पंच कल्याणक तथा पैसे की बोली बोले, वह कहे पाँच हजार, वह कहे दस हजार, वह कहे एक लाख! परन्तु क्या है? बापू! भाई! है न अफ्रीका में! वहाँ तो पैसेवाले बहुत हैं तो बहुत पैसा उड़ायेंगे! अफ्रीका! कहाँ गये रामजीभाई? वे रामजीभाई आनेवाले हैं। उनका भानेज है न वहाँ! आहाहा! यह सब ठीक। आहाहा! बहुत ऐसा हो गया और बहुत (पैसे) इकट्ठे हुए और बहुत लोग इकट्ठे हुए, दो-पाँच करोड़ खर्च करने हैं। आहाहा! यह सब शुभविकल्प है। बाहर की क्रिया तो उसके कारण से होती है, भाई! सत् को आँच नहीं देना, बापू! इन बाहर की चमक में सत् है, उसका आश्रय लेना और उसके आश्रय से ही सब होगा, इसके अतिरिक्त आँच देना नहीं। ऐसा करेंगे तो हमें लाभ होगा और यह करेंगे तो लाभ होगा, (ऐसा) रहने दे, प्रभु! आहाहा! यह आड़ लगाना रहने दे। आहाहा!

ओहो! आचार्य के हृदय क्या काम करते हैं! उन्हें अन्तर में समाधि में एकाग्रता के सिवाय कहीं सूझ नहीं पड़ती। यह सूझ-बूझ अन्तर की है। आहाहा! है या नहीं इसमें - कलश में?

'एकाग्र्यम् एव कलयन्ति' ऐसा शब्द है न? आहाहा! इस शब्द में यह भरा हुआ है, हों, प्रभु! आहाहा! दूसरा आवे, न आवे, कविता करना आवे, न आवे, याददाश्त बहुत न हो। आहाहा! परन्तु एक याददाश्त करनेवाला भगवान है, उसे याद करके एकाग्र हो। आहाहा! चिमनभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अभी तो मुश्किल हो गयी है। प्रभु का माहात्म्य पड़ा रहा और यह सब (बाहर के) माहात्म्य बढ़ा दिये। आहाहा! शास्त्र का पठन और मन्दिर और इन्द्र हो बड़े एक लाख, दो-दो लाख (खर्च करे)।

मुमुक्षु : अपने भी यहाँ शिविर तो लगाया है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस बार लोग अधिक आयेंगे, ऐसा लगता है। चार सौ लोग तो आते हैं, इस बार पाँच सौ के लगभग हो जाएँगे। इस बार अधिक आयेंगे, ऐसा लगता है। चारों ओर से आना चाहते हैं। आवें, होता है, यह सब है, परन्तु इसमें करना तो जो द्रव्य है, उसमें दृष्टि करके फिर उसका ही अभ्यास करना। यह बात है। ऐई! आहाहा!

मुमुक्षु : एकाग्रता का अभ्यास किस प्रकार करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रश्न यह है। वस्तु है, वह अनुभव हुआ, इसलिए फिर उसमें एकाग्र हो। वस्तु पहली सम्यग्दर्शन में अनुभवी है न! उसकी बात है न! सम्यग्दर्शन कैसे होगा ? ऐसा पूछे तब तो पूरे दिन बात तो चलती है। पूर्णानन्द के नाथ अभेद पर दृष्टि जाने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय के लक्ष्य से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता और फिर भी उसमें ही एकाग्र होना। बाद की बात चलती है, पहले की नहीं।

यह तो यहाँ कहा न ? **उद्धत ज्ञान (-जो कि किसी के दबाये नहीं दब सकता ऐसा उन्नत ज्ञान) जिसका लक्षण है, ऐसे शुद्धनय में रहकर अर्थात् शुद्धनय का आश्रय लेकर जो सदा ही एकाग्रता का अभ्यास करते हैं...** आहाहा! बहुत भरा है, प्रभु! सन्तों के हृदय में उस समय भाव (कैसे होंगे)! आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्र के लिए एकाग्रता करनी न!

पूज्य गुरुदेवश्री : उस स्वरूप में एकाग्रता वह सब यह। यह दर्शन और यह ज्ञान और यह चारित्र, यह शुक्लध्यान और केवलज्ञान सब। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! बाहर में तो छब्बीस हजार लोग! गाँव में ऐसा हो गया, ओहोहो! छब्बीस हजार लोग! परन्तु उससे क्या ? बापू!

मुमुक्षु : धर्म का प्रचार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म का प्रचार ऐसे होगा ? भगवान आत्मा धर्म के स्वभाव से भरपूर धर्मी! धर्म से भरपूर धर्मी! उसे पर्याय में धर्म प्रगट होना। तीनों में धर्म हो गया। धर्मी धर्मस्वरूप, धर्म गुणधर्मस्वरूप, वैसा ही पर्याय में धर्मस्वरूप, स्वरूप-सन्मुख की एकाग्रता होने पर होता है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र धर्मस्वरूप है और उसमें भी आगे बढ़ने के

लिए, वह भगवान आत्मा जहाँ से सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, उसी और उसी में एकाग्र होने पर केवलज्ञान होनेवाला है। आहाहा! ऐसा है, लोगों को एकान्त लगे, व्यवहार का लोप लगे। लगो बापू! क्या करे? आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार के पक्षवालों को कठोर लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर लगता है, बहुत कठोर लगता है। वस्तु सत्य ही यह है, परमात्मा यह है, बाकी सब बातें हैं। आज मानो, कल मानो, कब मानो, जब (भी मानो) यह मानने से ही इसे छुटकारा है। आहाहा! यहाँ करोड़ों का दान दे, इसलिए दानी हो गया! आहाहा!

दानी तो (उसे कहते हैं कि) अन्दर सम्प्रदान नाम का गुण है, उस गुणी को पकड़ने पर, एकाग्र होने पर जो दशा हुई और वह दशा स्वयं ने रखी, वह दानी है। आहाहा! वह व्यवहार दानी अर्थात् विकल्प और राग। होता है, हेयरूप से जाननेयोग्य होता है। यह वीरचन्दभाई! यह तुम्हारा नैरोबी का बाकी है। उसमें यह सब यहाँ तो हल्का कर दिया है। यहाँ तो हल्का कर डालते हैं, पैसा-बैसा खर्चना और रखना, उसकी कोई कीमत नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

अभी वहाँ ९०वीं जन्म-जयन्ती का चन्दा किया। सवा दो लाख इकट्ठे किये। नैरोबी। मुहूर्त किया तब दो लाख दो हजार दिये। रामजीभाई के भानेज ने। आया है न! दो लाख दो हजार, ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारह, भीम ग्यारस के दिन मुहूर्त किया। आये थे न, अभी आये थे। रायचन्दभाई यहाँ आये थे। लड़का-लड़की कुछ नहीं है। उनकी माँ और पति-पत्नी (तीन) हैं। यह ठीक, राग की मन्दता है, बापू! उसे ऐसा मान बैठे कि इसमें से कुछ कल्याण हो जाएगा (तो ऐसा नहीं है)। अरे रे! ऐसी बातें भारी कठिन! आहाहा! मन्दिर बीस-बीस लाख के बनावे और कल्याण न हो? शास्त्र में तो ऐसा लिखा है कि जौ जितनी प्रतिमा स्थापित करे, उसका पुण्य सरस्वती नहीं कह सकती। परन्तु पुण्य न? धर्म नहीं न? आहाहा! वह पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा!

यहाँ तो इतना आया है कि उद्धत और एकाग्रता। दो आया, (उसके) ऊपर से यह सब चलता है। जो आत्मज्ञान हुआ, वह किसी को गिनता नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का राग

आया, उसे गिनता नहीं। ओहोहो! तीर्थंकरगोत्र का भाव बँधा, उसे भी गिनता नहीं। आहाहा! पर में जितनी एकाग्रता हो उसे तो वह गिनता नहीं, नहीं.. नहीं.. नहीं.. यहाँ एकाग्रता हो, वह (वास्तविक) वस्तु है। आहाहा!

'एकाग्र्यम् एव कलयन्ति' वे, निरन्तर 'रागादिमुक्तमनसः भवन्तः' रागादि से रहित चित्तवाले वर्तते हुए,.. रागादि है न? **रागादि से रहित चित्तवाले वर्तते हुए,..** आहाहा! अब यह पंचम काल के सन्त कहते हैं, प्रभु! और पंचम काल के साधु ऐसा कहे (कि) अभी शुभभाव ही होता है। अर र! ऐसी बात करते हैं। शान्तिसागर के पथगामी। शान्तिसागर को भी व्यवहार की क्रिया थी। बाकी कुछ नहीं। लोगों को महिमा आ जाती है (क्योंकि) बाहर में (कोई) नग्नवेश नहीं था न! व्यक्ति शान्त, उद्धत (नहीं) परन्तु दृष्टि (नहीं)। बापू! दृष्टि कोई अलौकिक बात है, भाई! आहाहा! वे श्रुतसागर उनके अनुगामी, ऐसा कहते हैं कि अभी तो शुभभाव होता है, दूसरा नहीं होता। भगवान! तू क्या करता है? प्रभु! तू है, ऐसा अव्यक्तरूप से भी तूने स्वीकार नहीं किया। महाप्रभु अन्दर है। आहाहा! भले शुभभाव से रहित, इतनी भी एकाग्रता, एक वस्तु है अन्दर महाप्रभु! और उसमें एकाग्र होना, वही मार्ग की शुरुआत है, वह मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। पाँचवाँ काल हो या चौथा काल हो या पाँचवें काल का अन्त हो। आहाहा! काल ऐसा है, इसलिए कुछ हल्का करो, हल्का! दूसरे हल्के रास्ते से जाया जाए, ऐसा (कहो)। आहाहा!

रागादि से रहित चित्तवाले वर्तते हुए, 'बन्धविधुर' आहाहा! वह बन्ध से तो विधुर है। विधुर नहीं कहते? महिला को विधवा कहते हैं और पति को विधुर कहते हैं। इसी प्रकार यह ज्ञानी बन्ध से विधुर है। आहाहा! विधुर है, उसे बन्ध है नहीं। आहाहा! **'बन्धविधुरं समयस्य सारम्' बन्धरहित..** रहित किसका अर्थ किया? इस विधुर का। विधुर का अर्थ रहित। अपने यहाँ कहते हैं न, पति को पत्नी मर जाए, तब (कहे) कि यह विधुर हुआ। विधुर अर्थात् रहित हुआ। इसी प्रकार यह समकिती बन्ध से रहित है, विधुर है, रंडुवा है।

समय के सार को (अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को) देखते हैं-अनुभव करते हैं। आहाहा! क्या कलश! आहाहा! एक-एक कलश में (अमृत भरा है!) अन्तर में एकाग्र होता है, वह बन्धरहित हो जाता है—ऐसा कहते हैं। समकिती को भले पहले

बन्धरहित कहा परन्तु वह सम्यग्दृष्टि भी फिर अन्दर एकाग्र हो, उतना बन्धरहित होता है और सम्पूर्ण एकाग्र हो तो अत्यन्त बन्धरहित होता है। ऐसा उसका स्वरूप है। भले समकिती को बन्ध और आस्रवरहित कहा, परन्तु फिर भी वह अपने में एकाग्र होगा। आहाहा! (निजस्वरूप का) भान तो हुआ है परन्तु एकाग्र होगा, उतने अंश में बन्धरहित होगा। समझ में आया? विशेष कहेंगे.... (*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)